सूरदास

(1) चरन-कमल बंदौं हरि राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरिलंघै, अंधे कौं सब कुछ दरसा ||
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ ॥

(2) अबिगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै । मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै ॥ रूप-रेख-गुन- जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै । सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै ॥

(३) मैया हौं न चरैहौं गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइँ पिराइ | "
जौं न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंहँ दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ |
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ ॥

(4) ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।

बृन्दाबन गोकुल बन उपबन, सघन कुंज की छाँही ॥ प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत। माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत ॥ गोपी ग्वाल बाल संग खेलत, सब दिन हँसत सिरात । सूरदास धनि धनि ब्रजबासी, जिनसौं हित जदु-जात ॥

(5) ऊधौ मन न भए दस बीस ।

एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस ॥

इंद्री सिथिल भईं केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस। आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस ॥ तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस |

सूर हमारैं नँद - नंदन बिनु, और नहीं जगदीस ॥

(6)निरगुन कौन देस कौ बासी ?

मधुकर कह समुझाइ सौंह दै, बूझतिं साँच न हाँसी ॥ को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी? कैसो भेष है बरन, कैसो, किहिं रस मैं अभिलाषी?

पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे करैगौ गाँसी ।

सुनत मौन वै रह्यौ बाबरौ, सूर सबै मति नासी ॥

गोस्वामी तुलसीदास

(7) उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ||
सहजहिं चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजरगामी ॥
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ राम गनेस गोसाईं ॥

(8) मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुद सर्ब ।
महामत्त गजराज कहूँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥
काम कुसुम धनु सायक लीन्हें, सकल भुवल बस अपने कीन्हें ।
देबि तजिय संसउ अस जानी, भंजब धनुषु राम सुन रानी ॥
सखी बचन सुनि भै परतीती, मिटा विषादु बढ़ी अति प्रीती ।
तब रामहि बिलोकि बैदेही । समय हृदयँ बिनवति जेहि तेहि ॥

(9) प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु, बिधु मंडल डोल ॥
गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचन जलु रह लोचन कोना । जैसें परम कृपन कर सोना ॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरजु प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मोर पनु साचा । रघुपति पद सरोज चितु राचा ॥
तौ भगवानु सकल उर बासी । करिहि मोहि रघुबर कै दासी ॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना । कृपानिधान राम सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें । चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें ।

(10)लखन लखेउ रघुबंसमनि, ताकेउ हर कोदंडु ।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मांडु ॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला।धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ||
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई । सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ||
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥

संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई ||
राम बाहु बल सिंधु अपारू । चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू |

राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥

(11)देखी बिपुल बिकल बैदेही | निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करड़ का सुधा तड़ागा ||
का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें ॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ।
लेत चढ़ावत खँचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ||
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ||

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले ॥

सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

(12) पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में डग है।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं—“चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित है?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

(13)
जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक वै ठाढ़े।
पोंछि पसेऊ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै, बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥

(14) रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ? |
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ?

(15) सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं |
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम बधू सिय सों' कहौ साँवरे से, सखि रावरे को हैं?' ॥

(16) सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली । -
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्है समुझाइ कछू मुसकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तडाग में भान उदै बिगसीं मनो मंज़ल कंज-कली ॥

रसखान

(17) मानुष हौं तौ वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर-धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी - कूल कदंब की डारन ॥

(18) धूरि भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी ॥
वा छबि को रसखानि बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों लै गयौ माखन-रोटी ॥

(19) मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहैं सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

बिहारीलाल

(20) मेरी भव - बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँईं परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥

(21) सोहत ओढ़ पीतु पटु, स्याम सलौनैं गात ।
मनौ नीलमनि-मैल पर, आतपु पर्यो प्रभात ॥

(22) अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट- जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष - रँग होति ॥

(23) या अनुरागी चित्त की, गति समुझे नहिं कोइ ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्जलु होइ ॥

(24) जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहिं
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहिं ॥

(25) जप, माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ कामु
मन- काँचै नाचे वृथा, साँचे राँचै रामु ॥

(26) दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़े दुःख-दंदु ।

अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रबि-चन्दुः ॥

(27) बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ-भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु दानु ॥

(28) नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोड़।
जेतौ नीचो वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥

(29)बढ़त-बढ़त संपति- सलिलु, मन - सरोजु बढ़ि जाइ |
घटत-घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥

(30) जौ चाहत चटक न घटै, मैलौ होइ न मित्त ।
रज राजसु न छुवाइ तौ, नेह-चीकने चित्त ॥

(31) बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरौ डरातु ।
ज्यों निकलंकु मयंकु लखि, गर्नैं लोग उतपातु ॥

(32) स्वारथु सुकृतु, न श्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाज, पराऐं पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥

सुमित्रानन्दन पन्त

(33) चींटी को देखो ?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे-सी जो हिल-डुल, काम करती वह सतत !
चलती लघुपद पल-पल मिल-जुल
वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति
कन कन कनके चुनती अविरत !

महादेवी वर्मा

(34)नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए हैं दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश भार,
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !

(35) टूटी है तेरी कब समाधि,
झंझा लौटे शत हार-हार
बह चला दृगों से किन्तु नीर
सुनकर जलते कण की पुकार!

सुख से विरक्त दुःख में सँभाल!
मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान !

रामनरेश त्रिपाठी

(36) अतुलनीय जिनके प्रताप का,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूम-घूमकर देख चुका है,
जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर ॥
देख चुके हैं, जिनका वैभव
ये नभ के अनन्त तारागण ।
अगणित बार सुन चुका है नभ,
जिनका विजय घोष रण-गर्जन ॥

(37) शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिनकी महिमा का है अविरल,
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ
जिनके दिव्य देश का मस्तक।
साक्षी सत्य-रूप हिम-गिरि-वर ।
जिनके जय-गीतों से अब तक ॥
उतरा करते थे विमान-दल,
जिसके विस्तृत वक्षःस्थल पर ॥

(38) सागर निज छाती पर जिनके,
अगणित अर्णव-पोत उठाकर ।
पहुँचाया करता था प्रमुदित,
भूमंडल के सकल तटों पर ।
नदियाँ जिसकी यश - धारा-सी,
बहती हैं अब भी निशि-वासर।
ढूँढो, उनके चरण-चिह्न भी,
पाओगे तुम इनके तट पर ॥

(39) विषुवत्-रेखा का वासी जो,
जीता है नित हाँफ-हाँफ कर।
रखता है अनुराग अलौकिक,
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर ॥
ध्रुव-वासी, जो हिम में तम में,
जी लेता है काँप-काँप कर।
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर,
कर देता है प्राण निछावर ॥

(40) जब तक साथ एक भी दम हो,
हो अवशिष्ट एक भी धड़कन।
पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन ॥
रखो आत्म-गौरव से ऊँची
एक बूँद भी रक्त शेष हो,
दीन वचन मुख से न उचारो,
जब तक मन में हे शत्रुंजय !
मानो नहीं मृत्यु का भी भय ॥

(41) निर्भय स्वागत करो मृत्यु का,
मृत्यु एक है विश्राम स्थल ।
जीव जहाँ से फिर चलता है,
धारण कर नव जीवन-संबल ॥
मृत्यु एक सरिता है, जिसमें,
श्रम से कातर जीव नहाकर ।
फिर नूतन धारण करता है,
काया-रूपी वस्त्र बहाकर ॥

(42) सच्चा प्रेम वही है जिसकी
तृप्ति आत्म-बलि पर हो निर्भर ।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,
करो प्रेम पर प्राण निछावर ||
देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित ।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित ॥

माखनलाल चतुर्वेदी

(43) चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।

सुभद्राकुमारी चौहान

(44) इस समाधि में छिपी हुई है,
एक राख की ढेरी।
जल कर जिसने स्वतन्त्रता की,
दिव्य आरती फेरी॥
यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की ॥
यहीं कहीं पर बिखर गई वह,

भग्न विजयमाला-सी।

उसके फूल यहाँ संचित हैं,

है यह स्मृतिशाला - सी ॥

सहे वार पर वार अंत तक,

लड़ी वीर बाला-सी।

आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर,

चमक उठी ज्वाला-सी ॥

बढ़ जाता है मान वीर का,

रण में बलि होने से।

मूल्यवती होती सोने की,

भस्म यथा सोने से ॥

रानी से भी अधिक हमें अब,

यह समाधि है प्यारी ।

यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की,

आशा की चिनगारी॥

इससे भी सुंदर समाधियाँ,

हम जग में हैं पाते।

उनकी गाथा पर निशीथ में,

क्षुद्र जंतु ही गाते ॥

पर कवियों की अमर गिरा में,

इसकी अमिट कहानी ।
स्नेह और श्रद्धा से गाती
है, वीरों की बानी ॥
बुंदेले हरबोलों के मुख,
हमने सुनी कहानी ।
खूब लड़ी मरदानी वह थी,
झाँसी वाली रानी ॥
यह समाधि, यह चिर समाधि
है, झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की ॥

मैथिलीशरण गुप्त

(45) सब तीर्थों का एक तीर्थ यह
हृदय पवित्र बना लें हम
आओ यहाँ अजातशत्रु बन,
सबको मित्र बना लें हम।
रेखाएँ प्रस्तुत हैं, अपने
मन के चित्र बना लें हम।

सौ-सौ आदर्शों को लेकर
एक चरित्र बना लें हम।
बैठो माता के आँगन में
नाता भाई-बहन का
समझे उसकी प्रसव वेदना
वही लाल है माई का
एक साथ मिल बाँट लो
अपना हर्ष-विषाद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है,
पावें सभी प्रसाद यहाँ ।

(46)मिला सेव्य का हमें पुजारी
सकल काम उस न्यायी का
मुक्ति लाभ कर्त्तव्य यहाँ है
एक-एक अनुयायी का
कोटि-कोटि कण्ठों से मिलकर
उठे एक जयनाद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है.
पावें सभी प्रसाद यहाँ ।

अशोक वाजपेयी

(47) फूल झरता है
फूल शब्द नहीं !
बच्चा गेंद उछालता है,
सदियों के पार
लोकती है उसे एक बच्ची !
बूढ़ा गाता है एक पद्य,
दुहराता है दूसरा बूढ़ा,
भूगोल और इतिहास से परे
किसी दालान में बैठा हुआ!
न बच्चा रहेगा,
न बूढ़ा,
न गेंद, न फूल, न दालान
रहेंगे फिर भी शब्द
भाषा एकमात्र अनन्त है !

श्यामनारायण पाण्डेय

(48) मेवाड़-केसरी देख रहा,
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण,
वह मान-रक्त का प्यास था।
चढ़कर चेतक पर घूम-घूम,
करता सेना रखवाली था।
ले महामृत्यु को साथ-साथ
मानो प्रत्यक्ष कपाली था॥

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल पानी को ।
राणा प्रताप सिर काट-काट,
करता था सफल जवानी को ॥

(49) सेना-नायक राणा के भी,
रण देख देखकर चाह भरे।
मेवाड़ - सिपाही लड़ते थे,
दूने तिगुने उत्साह भरे ॥
क्षण मार दिया कर कोड़े से
रण किया उतरकर घोड़े से ।

राणा रण-कौशल दिखा- दिखा,
चढ़ गया उतरकर घोड़े से ॥

क्षण भीषण हलचल मचा-मचा,
राणा-कर की तलवार बढ़ी।
था शोर रक्त पीने का यह,
रण-चण्डी जीभ पसार बढ़ी ॥

(50) "जो साहस कर बढ़ता उसको,
केवल कटाक्ष से टोक दिया।
जो वीर बना नभ-बीच फेंक,
बरछे पर उसको रोक दिया।
क्षण उछल गया, अरि घोड़े पर,
क्षण लड़ा सो गया घोड़े पर ।
बैरी दल से लड़ते-लड़ते,
क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर ॥ "

(51) क्षण में गिरते रुण्डों से,
मदमस्त गजों के शुण्डों से।
घोड़ों के विकल वितुण्डों से,
पट गई भूमि नरमुण्डों से |

ऐसा रण, राणा करता था,
पर उसको था सन्तोष नहीं ।
क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह,
पर कम होता था रोष नहीं ।

कहता था लड़ता मान कहाँ,
मैं कर लूँ रक्त-स्नान कहाँ ?
जिस पर तय विजय हमारी है,
वह मुगलों का अभिमान कहाँ?

ज्ञानात् मुक्तिः
* ||ज्ञानम् मनुष्यस्य तृतीय नेत्रम् || *